श्रीगणपतये नमः ॥

अथ जैनास्तिकत्वविचारः ।

एक नये जैन महाशयने एक छोटेसे लेखमें ५ हेतु-ओं द्वारा जैनधर्मी लोगोंको नास्तिकतासे बचाते हुये उनको आस्तिक सिद्ध करनेकी पूर्णचेष्टा शक्तिभरकी है। सो सामान्यतया यह बात अच्छी है कि यदि मनुष्य नास्तिक न होकर आस्तिक बन जाय तो उसका सुधार होगा और उससे अन्योंको भी सुख पहुंचेगा। यदि जैन लोग वास्तवमें आस्तिक हैं तो उनको कोई नास्तिक क्यों कहता वा मानता है? और यदि नास्तिक हैं तो आस्तिक कैसे हो सकते हैं? । इसपर संक्षेपसे हम अपना विचार प्रकट करना उचित समझते हैं। जिन महाशयके लेख पर हम समालोचना किया चाहते हैं वे महाशय लिखते हैं कि "अनेकसज्जन इस नास्तिक शब्दका कुछ अर्थ करते हैं अनेक कुछ" सो हमारी रायमें यह लेख ठीक नहीं है क्योंकि नास्तिक शब्दके अनेकार्थ नहीं हैं, किन्तु नास्तिक पदका जो एक अर्थ सर्वानुमतिसे सिद्ध है वह हम आगे दिखावेंगे। उन पांच हेतुओंमें प्रथम—

१–पाणिनिजी "परलोको नास्तीति मतिर्यस्या-स्तीति नास्तिकः,, अर्थात् परलोक नहीं है ऐसी जिसकी मति है वह नास्तिक है ऐसा अर्थ नास्तिक शब्दका करते हैं। जैनी लोग परलोक नाम स्वर्ग नरक और मोक्षको मानते हैं इससे इस पाणिनीय सूत्रानु-सार जैनी आस्तिक हैं ॥

उत्तर–ऊपरका लेख जैनियोंको आस्तिक सिद्धकर ने वाले नये जैनीका है जिसमें "परलोको नास्तीति मतिर्यस्यास्तीति नास्तिकः,, इसको पाणिनीय सूत्र बताया है। सो यह बात सर्वथा ही मिथ्या है पाणिनि आचार्यका अष्टाध्यायी व्याकरणमें कोई एक भी सूत्र ऐसा नहीं है। क्या यह लज्जा वा शर्मकी बात नहीं है कि पाणिनि आचार्यका जो सूत्र नहीं है उस मन गढ़न्तके पाठ को पाणिनिका सूत्र बताना ! । क्या किसी सभाके बीचमें नये पुराने जैन महाशयोंसे कोई पूछे कि आपलोग; अपने लेखानुसार पाणिनि आचार्यका सूत्र पा० व्याकरण में छपाकर दिखलाइये? तो क्या उस समय नीचा मुख नहीं करने पड़ेगा ?। जब वैसा पाणिनिसूत्र है ही नहीं

तब जैनलोग कहांसे दिखावेंगे ? । जब कि जैनोंमें भी अने-क लोग पढ़े हैं जिनसे पूछ लेते वा किसी पण्डित ब्राह्मण विद्वान्से पूछ लेते कि नास्तिक शब्द पर यह लिखना ठीक है वा नहीं, तो अवश्यमेव यह लेख ऐसा अशुद्ध नहीं होता । पाणिनि सूत्रको छोड़के महाभाष्य कैयट काशिका सिद्धान्तकौमुदी, लघुशब्देन्दुशेखर, तत्त्वबोधिनी इत्यादि किसी पुस्तकमें भी वह नये जैनीका लिखा पाठ ज्योंका त्यों नहीं है । अस्तु जो हो, अब हम पाणिनीय व्याकरणानुसार नास्तिक शब्दका ठीक२ अर्थ यहां दिखाते हैं ॥

अस्तिनास्तिदिष्टं मतिः ॥ अष्टाध्यायी।४।४।६०॥

काशिका—नास्ति मतिरस्य नास्तिकः । सिद्धान्तकौ०—नास्तीति मतिर्यस्य स नास्तिकः॥

भा०—सबका अभिप्राय यह है कि परोक्ष वा अदृष्ट सूक्ष्म विषय नहीं हैं ऐसी जिसकी मति है वह नास्तिक है । पाणिनि पतञ्जलि कात्यायन इन तीन मुनियोंका प्रमाण व्याकरणमें मुख्य माना जाता है । सो तीनमें से किसीने भी वैसा नहीं लिखा कि जैसा नये जैन

महाशय पाणिनिका सूत्र बताते हैं। यदि नये जैन म-
हाशय कहें कि यद्यपि परलोकको न मानने वालेका नाम
पाणिनि पतञ्जलिने नास्तिक नहीं कहा तो भी काशिका
कौमुदी आदि टीकाकारोंका अभिप्राय तो ऐसा ही
है कि जैसा हमने लिखा है तब इसका जवाब यह
है कि आपने दोनों ओरसे लिखे डवल कामामें "पर
लोको नास्तीति०,, ऐसा लिखकर आगे कहा "इस
पाणिनीय सूत्रानुसार,, सो जैन महाशयका यह कथन
मिथ्या सिद्ध होगया क्योंकि जब "परलोको नास्ती-
ति,, ऐसा पाणिनिका सूत्र कहीं है ही नहीं, तब इस
पाणिनीय सूत्रानुसार ऐसा लिखना निःसन्देह मिथ्या
ही मानने पड़ेगा। आशा है कि ऐसा मिथ्या आगे
आप न लिखेंगे॥

अब रहा काशिकादि टीकाकारोंका अभिप्राय सो
हम भी मानते हैं, उन टीकाकारोंमें से किसीका भी
ऐसा लेख कोई जैन महाशय दिखा देवें कि ईश्वरको
न मानने वाला होने पर भी जो परलोकको माने वह
आस्तिक है तो हम भी मान लेंगे कि जैनोंका कहना
ठीक है। पर ऐसा लेख कोई नहीं दिखा सकता, इस

से वह भी ठीक नहीं है। वास्तवमें नास्तिकपनके दो अंश मुख्य हैं उनमें एक पुनर्जन्म स्वर्ग नरकादि और द्वितीय ईश्वर, इन दोनों को ठीक मानने वाले आस्तिक कहाते हैं, इन दोनोंमें ईश्वरका माननेवाला पुनर्जन्मको न मानने पर भी अधिकांश आस्तिक कहावेगा। इसी विचार से ईसाई मुसलमान दोनों आस्तिक माने जाते हैं। नास्तिक पदका संक्षेपसे गोलार्थ यही है कि परोक्षांशको न माने वह नास्तिक है उस परोक्षांश में ईश्वर मुख्य तथा पुनर्जन्मादि गौण हैं क्योंकि जिसने ईश्वर को मान लिया उसे पुनर्जन्म वा स्वर्ग नरकादि भी किसी न किसी प्रकार मानने ही पड़ेंगे, इसी कारण ईसाई मुसलमान लोग भी स्वर्ग नरकको मानते हैं। क्योंकि ईश्वर ही सब स्वर्ग नरकादि का स्वामी अधिष्ठाता है। उसीको जिसने न माना वह पुनर्जन्मादिकों को भी न मानने वाला विचार करने पर सिद्ध हो जायगा॥

अब रहा यह कि परलोकको न मानने वाला आस्तिक कैसे कहावेगा सो सुन लीजिये—

लोक्यते दृश्यते सूक्ष्ममत्या सूक्ष्मदर्शिभि-र्योगिजनैः सलोक ईश्वरः, पर उत्तमः परश्चा-सौ लोकः परलोकः ॥

भा०—सूक्ष्मदर्शी योगी ज्ञानी लोग जिसको अपनी सूक्ष्म बुद्धिसे लोकते नाम देखते जानते हैं वही लोक पदका अर्थ ईश्वर है और पर नाम जो उत्तम ईश्वर है वही परलोक है । उस परलोक नामक ईश्वरको न मा-नने वाला नास्तिक और मानने वाला आस्तिक कहा-वेगा । तथा पर नाम इस शरीरसे अन्य चक्षु आदि इन्द्रियोंसे जो देखा जाना जाय वह परलोक है ऐसा अर्थ करनेसे पुनर्जन्म सम्बन्धी स्वर्ग नरकादिका भी नाम परलोक हो जायगा । परलोक शब्दका ऐसा अर्थ होने पर जैन लोग परलोक के मानने वाले सिद्ध नहीं होते इसी कारण उनको नास्तिक कहना मानना ठीक बन जाता है । शब्दोंका अर्थ करने जाननेके लिये कोष और व्याकरण दो ही मुख्य हैं उन कोष व्याकरणादिके ब-नाने वा व्याख्यान करने वाले लोग शब्दों का अर्थ दिखाते समय लेश मात्र भी अपने मतका पक्ष कदापि

नहीं करते, इसी लिये उन २ कोष व्याकरणोंको सभी मानते हैं। अष्टाध्यायी व्याकरण सनातनधर्मी पाणि-नि आचार्यका बनाया है उसमें सभी शब्दोंकी सिद्धि होती है व्याकरणांशमें सभी लोग उसका प्रमाण मान-ते हैं। अष्टाध्यायीकी वृत्तिकाशिका जयादित्य वामन जैन पण्डितोंकी बनायी है, उसे हम सब सनातनधर्मी भी मानते हैं। व्याकरणका विचार हम लिख चुके॥

अब कोशका विचार देखिये जैसे अमरसिंह जैनका बनाया होने पर भी निष्पक्ष होनेसे अमरकोषको सभी लोग प्रामाणिक मानते हैं वैसे ही शब्दकल्पद्रुम और वाचस्पत्य बृहदभिधानादि कोषोंको सभी जैन लोग भी प्रामाणिक मानते हैं। इससे हम यहां शब्दकल्पद्रुम का लेख प्रमाणमें दिखाते हैं—

नास्तिकः पुं० (नास्ति) परलोक ईश्वरो वेति मतिर्यस्य। "अस्तिनास्तिदिष्टं मतिः।" ४।४।६०। इति ठक्। यद्वा, नास्ति पर-लोको यज्ञादिफलं ईश्वरो वेत्यादिवाक्येन

कायति शब्दायते इति। पाखण्डः। ईश्वरनास्तित्ववादी। वेदाप्रामाण्यवादी। तत्पर्यायाः— बार्हस्पत्यः। चार्वाकः। लौकायतिकः। इति हेमचन्द्रः। ३। ५२६॥ स च षड्विधः। १—माध्यमिकः। २ योगाचारः। ३—सौत्रान्तिकः। ४—वैभाषिकः ५—चार्वाकः ६—दिगम्बरः॥

भावार्थ—परलोक तथा ईश्वर कोई नहीं है ऐसी बुद्धि जिस की हो वह नास्तिक कहाता है यही अभिप्राय ४। ४। ६० सूत्रमें पाणिनि आचार्यने कहा है। ध्यान रहे कि यहां केवल परलोकको न मानने वालेका नाम नास्तिक नहीं कहा, किन्तु साथ ही में जो ईश्वर को भी नहीं मानता वही नास्तिक बताया गया है। अथवा नास्तिक पदका द्वितीयार्थ यह है कि परलोक नाम यज्ञादिका फलरूप स्वर्गादि और ईश्वर नहीं है, ऐसा हल्ला मचाने वाला पाखण्डी नास्तिक कहाता है नास्तिकके पर्यायवाचक मुख्यकर बार्हस्पत्य, चार्वाक और लौकायतिक ये तीन शब्द हैं। वे नास्तिक छः

प्रकार के छः नामोंसे विशेष कर प्रसिद्ध हैं-जिनमें माध्यमिक, योगाचार, सौत्रान्तिक, वैभाषिक ये चारों प्रकार बौद्धोंके हैं यथा—

चतुःप्रस्थानिकाबौद्धाः ख्यातावैभाषिकादयः ॥

ये ही ऊपर कहे चार प्रकारके बौद्ध नास्तिकों के चार भेद हैं, नास्तिकों का पांचवां भेद चार्वाक बौद्धों से भी बढ़ा बढ़ा नास्तिक है। और छठा भेद दिगम्बर नामक जैन हैं। अब पाठक महाशय ध्यान रक्खें कि दिगम्बर जैनों को शब्दकल्पद्रुम कोश वालेने स्पष्टतया षड्विध नास्तिकोंमें गिना दिया है। आशा है कि अब जैनोंका नास्तिक होना निर्विवाद सिद्ध होगया ॥

अंगरेजीमें थेसस (Thesus) नाम गाड (God) ईश्वर का है उस थेससको माननेवाला थीस्ट नाम आस्तिक कहाता और उस थेससको न मानने वाला अथीस्ट (Atheist) नाम नास्तिक कहाता है। इससे भी साफ २ सिद्ध है कि अनीश्वरवादीका ही नाम नास्तिक है। इस समय दुनियां भरमें हिन्दु मुसलमान ईसाई ये तीन मजहब बड़े २ मुख्य हैं इन तीनोंके विद्वानों,

पण्डितों वा आलिमोंकी कसरतरायसे यही सिद्ध हो चुका है कि ईश्वरको न मानने वाला ही मुख्यकर नास्तिक है। जो मनुष्य ईश्वरको मानता है वह सनातनधर्मके नियमानुसार किसी न किसी प्रकार वेदको भी अवश्य मानता है क्योंकि वेदका सबसे बड़ा कर्तव्य [फर्ज] ईश्वरको ही बताना है। उस ईश्वरको माननेवालेने वेदकी खास बातको मान लिया। और स्वर्ग नरकादि परलोक का स्वामी भी ईश्वर है इससे ईश्वर को मानने वाला वेदको तथा स्वर्गादिको मानने वाला कहा जा सकता है और इसीसे वह विशेषकर आस्तिक है। तथा ईश्वरको न मानने वाला ही वास्तव में नास्तिक है॥

२—अनेक सज्जन नास्तिक शब्दका अर्थ यह करते हैं कि "जो जीव और पाप पुण्यादिका अस्तित्व न माने वह नास्तिक है„ जैन लोग उक्त दोनों को मानते हैं इससे नास्तिक नहीं हैं॥

उत्तर—ऊपर लिखा नं० २ का कथन नये जन सम्प्रदाय का है। जीव और पाप पुण्यका अस्तित्वजैन

लोग कैसा मानते हैं और उनका वह मन्तव्य कहांतक ठीक है वा उसमें भी घपला है ऐसी मीमांसा यहां करें तो विषयान्तर होगा, इससे उस विचारको अन्यत्र कहीं प्रसंगानुसार लिखेंगे। अभी हम दुर्जनतोष न्याय से मान ही लेते हैं कि नये जैन महाशय जीव और पाप पुण्यादिका अस्तित्व मानते हैं। तब भी तो यही कहावत सिद्ध होती है कि "भक्षितेऽपि लशुने न शान्तो व्याधिः" पाप पुण्य नरक स्वर्ग इत्यादिका मानना ईश्वरवादीके मतमें ही ठीक बन सकता है किन्तु अनीश्वर वादीके मत में पाप पुण्यादिका मानना कदापि सिद्ध नहीं हो सकता, यदि नास्तिकतासे बचनेके लिये पाप पुण्यकी व्यवस्था रोगनाशार्थ लशुन भक्षणके तुल्य मान लेते हैं तो भी आस्तिक सिद्ध नहीं हुए क्योंकि "जीव और पाप पुण्यादिका अस्तित्व मानने वाला आस्तिक कहाता है" ऐसा किसीने नहीं कहा न माना इससे नये जैनकी कल्पना युक्ति प्रमाणसे विरुद्ध होने के कारण मिथ्या है॥

३—"जो ईश्वरको न माने या उसका अस्तित्व स्वीकार न करे वह नास्तिक है" ऐसा मानने पर भी जैनी

नास्तिक सिद्ध नहीं होते क्योंकि यह बालगोपालतः प्रसिद्ध है कि जैनियोंके मन्दिर होते हैं और उनमें वह किसीकी मूर्त्ति स्थापित कर उसकी उपासना करते हैं वही उनका ईश्वर है अतः सिद्ध हुआ कि जैनी ईश्वर को मानते हैं और उसका अस्तित्व भी स्वीकार करते हैं इस कारण आस्तिक हैं ॥

उत्तर—इस तीसरे नम्बरमें ईश्वरको मानना और उसका अस्तित्व स्वीकार करना दोनों एकही बात है क्योंकि जो किसी वस्तुका अस्तित्व स्वीकार करना है वही उसका मानना है और जो मानना है वही उस का अस्तित्व स्वीकार है इस कारण नये जैनकी इबारत पुनरुक्त होनेसे अशुद्ध है। पाठक महाशय! ध्यान रक्खें कि जो मन्दिरमें किसीकी मूर्त्ति स्थापित कर उस की उपासना करें वे ईश्वरवादी आस्तिक होते हैं। क्या यह आस्तिक होनेका लक्षण ठीक है? अर्थात् कदापि नहीं, आर्यसमाजी लोगोंके समाज मन्दिर सैकड़ों जहां तहां बने हैं वहां सैकड़ों वक्ता श्रोता लोगों की मूर्त्ति स्थित होती हैं वहां उपासना भी होती है।

परन्तु समाजी लोग निराकार वादी होनेसे उक्त कारणसे आस्तिक नहीं कहाते किन्तु वे ईश्वरका अस्तित्व माननेसे ही आस्तिक कहाते हैं। मुसलमानोंके यहां मसजिद रूप मन्दिर होते हैं उनमें उपासना भी करते हैं किन्तु किसीकी मूर्त्ति स्थापित नहीं करते तो भी खुदाको मानने वाले होनेसे मुसलमान लोक आस्तिक कहाते हैं॥

मन्दिर शब्द सामान्य घरका नाम है, अमरसिंह जैनका ही लेख है कि "भवनागारमन्दिरम्" अमरकोश कां० २ वर्ग २। ५। इसके प्रमाणसे जब जैनोंके मन्तव्यानुसार भी जो चार्वाकादि नास्तिक हैं उनके भी मन्दिर होते हैं। और मूर्त्ति नाम शरीरोंका भी है (मूर्त्तिः काठिन्यकाययोः) अमरकोश, तब यह आया कि अपने २ घरोंनाम मन्दिरोंमें आस्तिक नास्तिक सभी लोग अपनी स्त्री आदि रूप शरीर मूर्त्ति स्थापित करते हैं। और किसी में तत्पर वा संलग्न होना ही उपासना कही जा सक्ती है। अर्थात् उपासना शब्द केवल ईश्वर देवताकी उपासनामें ही नहीं आता है किन्तु—

उपासतेयेगृहस्थाः परपाकमबुद्धयः ॥ मनु० ॥

यहां पराये भोजनमें तत्पर रहना ही परपाकोपासना दिखायी है इससे यह आया कि प्रत्येक घरों नाम मन्दिरोंमें स्त्री पुत्रादिकी वा धनादिकी मूर्त्ति (रुपया पैसा) स्थापित करके सभी नास्तिकभी उपासना करते हैं इससे वे भी ईश्वरवादी आस्तिक सिद्ध हो जाने चाहिये। अथवा यों कहो कि कोई अपने घर रूप मन्दिरमें अपने किसी प्रिय वियुक्त वा मृत हुए मित्रादिकी प्रतिमा बनाले और उसको देखने आदि में वा उसकी सुरक्षा करनेमें तत्पर रहता हो तो क्या इस प्रकारके मन्दिर मूर्त्ति वा उपासनासे वह आस्तिक माना जायगा ?।

अथवा यों कहो कि सनातनधर्मी लोग वा अन्य कोई भी अपने २ माननीय पूर्वज बापदादोंकी प्रतिमा वा मूर्त्ति बनवाके किसी मकान में रखले, वा देवस्थानके रूपमें बनाये मन्दिरमें रख लेवे और उसकी सेवा उपासना किया करे तो क्या वह इतने हीसे ईश्वरवादी आस्तिक माना जायगा ?। अर्थात् कदापि

नहीं, इस लिये नये जैन महाशयका यह लिखना सर्वथा पोच है कि "जैनोंके मन्दिर होते हैं वे उनमें किसी की मूर्त्तिस्थापित करके उपासना करते हैं इससे वे ईश्वरवादी आस्तिक हैं" शोचनेकी बात है कि मूर्त्ति तो चाहें किसी जानवर की स्थापित करें पर होजायं ईश्वरवादी ?। प्रयोजन यह है कि इस लेखमें कोई भी ऐसा पुष्ट युक्तिप्रमाण नहीं है कि जिससे जैनी लोग आस्तिक ठहर सकें ॥

हम सनातन धर्मी लोग मूर्त्तियोंके प्रकार भेदादिके कारण जैनधर्मियोंको कदापि नास्तिक नहीं कहते और न ऐसा मानते हैं किन्तु हम वेदमतानुयायी लोग ईश्वरको न माननेके कारण अवश्य जैनधर्मी लोगोंको नास्तिक कहते मानते हैं। पाठक महाशय! ध्यान रखिये कि प्रथम तो नवीन जैन महाशयने यह लिखा कि "जो ईश्वरको न माने या उसका अस्तित्व स्वीकार न करे वह नास्तिक है, ऐसा मानने पर भी जैनी लोग नास्तिक सिद्ध नहीं होते,, इस लेखका साफ २ मतलब यह है कि जैनी लोग ईश्वरको नहीं मानते और उसका

अस्तित्व भी स्वीकार नहीं करते यह तो ठीक है पर तो भी जैनी नास्तिक नहीं। यहां नये जैन महाशयने साफ २ ईश्वर का न मानना स्वीकार कर लिया है। अब आगे इससे विरुद्ध लिखा भी देख लीजिये कि "जैनी ईश्वर को मानते हैं और उसका अस्तित्व भी स्वीकार करते हैं इस कारण आस्तिक हैं,, यह लेख पहिले लेखसे सर्वथा ही विरुद्ध है। अब नवीन जैन महाशय से पूछना चाहिये कि इन दोनों परस्पर विरुद्ध लेखोंमें कौन सा लेख सत्य है? और कौनसा मिथ्या है। यदि जैन लोग ईश्वर को न मानने पर भी आस्तिक हैं यह कथन सत्य है तो जैनोंका अनीश्वरवादी होना स्वयं ही नये जैनने मान लिया और फिर ईश्वरको मानके आस्तिक बनने का लेख लिखनेसे सिद्ध हुआ कि ईश्वरको न मानने वाला ही नास्तिक होता है

यह बात सत्य है कि, संसार में अच्छे जानकार विद्वान् सभी मतों में सदा से ही कम होते हैं और साधारण वा अज्ञानी अल्पज्ञ मनुष्य अधिक होते हैं, ऐसे अल्पज्ञ लोगोंको बहका देनेके लिये जैनी लोग,

प्रायः लिख देते हैं कि हम तो ईश्वरको मानते हैं सो ऐसा लिखना अल्पज्ञोंको धोखा देना है कि जिससे हमको कोई नास्तिक न कहे। वास्तव में सत्य यह है कि जैन लोग ईश्वर को नहीं मानते प्रत्युत ईश्वर माननेका खण्डन जिस २ प्रकार करते हैं सो विचार हम आगे क्रमशः प्रकाशित करेंगे ॥

अब रहा यह कि जैनी लोग कर्ममलसे अलिप्त हो जाने वाले असंख्य जीवोंको ईश्वर मानते हैं। इस पर पूछना यह है कि इस समय कई लाख जैन लोग हैं इनमें कोई भी कर्ममलसे अलिप्त होनेके कारण ईश्वर बना है वा नहीं? यदि बना है तो उसका नाम पता बताना चाहिये हम भी उस बनावटी जैन ईश्वरके दर्शन करें। और यदि वर्त्तमानकालमें कोई भी जीव कर्ममलसे अलिप्त नहीं है जो ईश्वर माना जाय तो सिद्ध हुआ कि जैनमतानुयायी सभी मनुष्य मलिन हैं शुद्ध अलिप्त एकभी नहीं, तब ऐसे मललिप्तोंकी बात वा लेख भी प्रमाण कोटिमें नहीं आसकता। और यह भी आश्चर्य की बात है कि जैनोंके असंख्य ईश्वर हैं क्या? वे सब ईश्वर आपसमें लड़ाई झगड़ा करते हैं क्या?—

बहूनां कलहो नित्यम् ॥

बहुतोंमें नित्य कलह होना स्वभाव सिद्ध नहीं है? उन असंख्य जैन ईश्वरोंको बांट करने पर कितना २ ऐश्वर्य मिला है और उन जैन ईश्वरोंकी प्रजा वा रियाया कितनी है। जब जैन लोग पृथिवी पर संख्यात हैं और जैनोंके ईश्वर असंख्य हैं तो एक २ ईश्वर के हिस्सेमें एक २ जैन भी नहीं आसकता।

जैन लोग ईश्वर को मानते हैं वा नहीं इस अंश पर अधिक विचार करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि सब संसार के स्वामी एक ईश्वर को माननेका स्पष्ट ही जैनोंके मत में खण्डन है "कर्ममलसे अलिप्त प्रत्येक जीवमात्र को ईश्वर मानते हैं, नये जैन के इस लेख से भी ईश्वरका न मानना सिद्ध है। राजाको चार्वाक भी ईश्वर मानता है वह राजा भी एक जीव है इससे इस अंश में चार्वाक के साथ भी इन की एकता सिद्ध है॥

४—ईश्वरको संसारका कर्ता हर्ता न माननेसे जैनी नास्तिक हैं सो भी ठीक नहीं॥

समाधान—हमारी रायमें यह बात निर्मूल है अर्थात् ऐसा कोई भी नहीं कहता मानता कि "संसार का कर्त्ता हर्त्ता ईश्वरको न माननेके कारण जैनी नास्तिक हैं,, ऐसी बात किसी मान्यग्रन्थ में भी नहीं लिखी है तब मनमाना विचार लिखना वेसमझी है। हम सनातनधर्मी लोग भी ईश्वरको निमित्तमात्र कर्त्ता मानते हैं इससे कुम्भकारादि कर्त्ताके तुल्य ईश्वर जगत् का कर्त्ता हर्त्ता नहीं है किन्तु जैसे चुम्बकको विद्यमानतामें ही लोहकी प्रवृत्ति होती है तो चुम्बक के निश्चल निष्क्रिय होने पर भी सन्निधिमात्र से लोहस्थ क्रियाका कर्त्ता चुम्बक माना जाता है। इसी प्रकार माया नामक प्रकृति लोहस्थानी है चुम्बक स्थानी ईश्वरका अधिष्ठातृत्व होने पर ही संसार की उत्पत्ति स्थिति प्रलय होता है इस प्रकार ईश्वरको संसार का कर्त्ता हर्त्ता मानने पर कुछ भी दोष नहीं आता तब ईश्वरको कर्त्ता मानना सर्वथा निर्दोष है जैनोंके अकर्तृत्ववाद का भी खण्डन यथावसर कहीं कभी किया जायगा। यहां अभी मौका नहीं है॥

उक्त नये जैनी महाशय लिखते हैं कि—"यह सिद्धान्त तो इतना पोच है कि जैनियों का पांच वर्षका बुद्धिमान् बालक भी इसका खण्डन कर सकता है "। यह लिखना बहुत ही अज्ञानग्रस्त इसलिये हैं कि जब अभीसे जैनमत चला हो तबसे अद्यावधि जैनमतमें एक भी पण्डित ऐसा नहीं हुआ कि जिसने यह जाना हो कि वेदके सिद्धान्तानुसार ईश्वरका कर्तृत्व क्या वा कैसा है. यदि किसीने जानाहोता तो ऐसा ऊपरका सा भद्दा लेख कोई भी न लिखता। जिस कर्तृत्व में जैनी लोग दोष देसकते हैं वैसे कर्तृत्व को वेदमतानुयायी कोई मानता ही नहीं और जैसा कर्तृत्व हम लोग मानते हैं उसमें कोई दोष निकाल ही नहीं सकता॥

मयाध्यक्षेणप्रकृतिः सूयतेसचराचरम्।

गीतामें कहा है कि परमात्माके अधिष्ठाता मात्र होते हुए प्रकृति सब संसारको बनाती है। क्या लोह गत चेष्टाका हेतुरूप कर्त्ता चुम्बक नहीं है?। क्या चक्षु से दृश्य शुभाशुभका कर्त्ता सूर्य.दीपकादि नहीं हैं?। क्या चुम्बक सूर्य और प्रदीपादि निरिच्छ निष्क्रिय पदार्थोंमें कोई जैनादि किसी प्रकारका दोषारोप कर

सकता है ? अर्थात् कदापि नहीं, तव इन्हीं कुम्भकादि के समान परमात्माको हम भी मानते हैं ऐसे कर्त्तृत्व का खण्डन जैनोंके आदि तीर्थङ्कर भी नहीं कर सकते तव पांच पचास वर्षके वालकको क्या वात है ? ॥

अज्ञोभवतिवैवालः । अज्ञं हिवालमित्याहुः ॥

इनके अनुसार पांच पचास आदि वर्षके सभी जैन वालक ही कहे जावेंगे कि जिन को इतना भी वोध नहीं हुआ कि वेदानुकूल कर्त्तृवाद क्या है ? । भगवद्गीताका उक्त लेख निम्न श्रुतियोंके अनुसार है—

कालःस्वभावोनियतिर्यदृच्छा भूतानियोनिः पुरुषइतिचिन्त्यम् । संयोगएषांनत्वात्मभावादात्माऽप्यनीशः सुखदुःखहेतोः ॥ १ ॥

ते ध्यानयोगानुगताअपश्यन् देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम् । यःकारणानिनिखिलानितानि कालात्मयुक्तान्यधितिष्ठत्येकः ॥ २ ॥

भाषार्थ—श्वेताश्वतरशाखाकी ये श्रुतियां हैं जिनका संक्षेपसे अभिप्राय यह है कि १—काल, २—स्वभाव, ३—नियति होनहार, ४—यदृच्छा अकारण वा स्वतन्त्र,

५—भूत, ६—योनि-नाम प्रकृति, ७—पुरुष इन सबका संयोग सृष्टिका हेतु कर्त्ता है केवल आत्मभाव नाम ईश्वरकी सत्तामात्रभी हेतुकर्त्ता नहीं है। सुख दुःखका हेतु केवल आत्मा नहीं है किन्तु उक्त सभी कालादिका संयोग है परन्तु कालादि जड़ अचेतन है इस लिये ध्यान योगमें अवस्थित हुए महर्षियोंने ज्ञानचक्षुसे देखा कि देवात्मशक्ति अपने गुणोंसे छिपी हुई कालादिके साथ विद्यमान है उसी शक्तिका स्वामी सब कालादिका अधिष्ठाता है इसीसे कालादिका संयोग कर्त्ता कहाता है तथा ईश्वरके कर्तृत्ववादमें सनातनधर्मका सिद्धान्त यह है कि

निरिच्छे संस्थिते रत्ने यथा लोहः प्रवर्त्तते।
सत्तामात्रेण देवेन तथा चायं जगज्जनः॥ १॥
अत आत्मनि कर्तृत्व-मकर्तृत्वं च संस्थितम्।
निरिच्छत्वादकर्त्तासौ कर्त्ता सन्निधिमात्रतः॥२॥

भावार्थ—जैसे इच्छा रहित धरे हुये चुम्बकके समीप होते ही लोहे में क्रिया होती है। लोहगत क्रियाका हेतु कर्त्ता चुम्बक है। वैसेही ईश्वरके विद्यमान होने मात्रसे प्रकृतिमें सृष्टि रचनादिकी सब चेष्टा हुआ करती

है। दृष्टान्त दार्ष्टान्तमें भेद इतना ही है कि चुम्बक जड़ है और ईश्वर सर्वज्ञ चेतन है निरिच्छता और प्रयोजकता दोनोंमें एकसी है इस दृष्टान्तसे परमेश्वरमें कर्तृत्व अकर्तृत्व दोनों ही माने जाते हैं। निरिच्छ होनेसे परमेश्वर अकर्त्ता और उसके समीप हुये विना प्रकृति कुछ नहीं कर सकती इस कारण ईश्वर कर्त्ता है।

प्रदीपभावाभावयोर्दर्शनस्य तथाभावाद् दर्शनहेतुः प्रदीप इति न्यायः॥

न्यायकी शैली यह है कि जिसके होनेपर जो हो और न होनेपर न हो वह उसका हेतु कर्त्ता माना जाता है। जैसे दीपकादि वाह्यप्रकाशके होनेपरही आंखोंसे रूप दीखता है और आंखें होने पर भी दीपादि वाह्य प्रकाशके विना रूप नहीं दीखता इससे दीपक देखना रूप क्रियाका हेतु कर्त्ता है। इस प्रकार ईश्वर का कर्त्ता होना न होना दोनों ही बातें जिस रीतिसे सनातनधर्म मानता है वैसे जैनी भी यदि सत्य बातको मानलें तो उनकी कुछ भी हानि नहीं है। परन्तु वे लोग जब अपने मिथ्या ज्ञानके हठपर सवार होगये हैं तब हम क्या कर सकते हैं?। जैसे हम ईश्वर को

साकार निराकार दोनों प्रकारसे मानते हैं परन्तु आर्य्य समाजी केवल निराकार ही मानते हैं। इसी प्रकार हम ईश्वरको कर्त्ता अकर्त्ता दोनों मानते हैं पर जैन लोग एक अकर्त्ता ही मानते हैं। सो यह यदि जैनलोग हमारे लिखे अनुसार निरिच्छ निष्क्रिय अचल अटल होनेके कारण ईश्वरको अकर्त्ता मानलें तो हमारा जैनोंका सिद्धान्त अधिकांश मिलसकता है। परन्तु जब जैनमतमें कोई ईश्वर ही नहीं है किन्तु सिद्ध जीव ही ईश्वर हैं तब कर्तृत्वादिका झगड़ा उठाना उनका वितण्डामात्र है॥

"कथंचित् ईश्वर संसारका कर्त्ता हर्त्ता है ऐसा माननेसे जैनी आस्तिक हैं।,, इस नये जैनके लेखमें जो कथंचित् शब्द है उसीसे सिद्ध है कि ईश्वरको संसारका कर्त्ता हर्त्ता कथंचित् मानते हैं अर्थात् किसी अंशमें मानते हैं सर्वांशमें नहीं, तब सिद्ध हुआ कि जिस अंशमें कर्त्ता हर्त्ता मानते हैं उतने अंश में आस्तिक रहे और जिस अंशमें ईश्वर को कर्त्ता हर्त्ता नहीं मानते उसी अंशमें स्वयं अपने मुखसे नास्तिक सिद्ध होगये इसपर विशेष कहना व्यर्थ है॥

(५) (नास्तिको वेदनिन्दकः) वेद की निन्दा करनेसे जैनी नास्तिक हैं। सो जैनी ज्ञानार्थ वेद के निन्दक नहीं है। परन्तु ऋगादि नामक ज्ञानार्थ शून्य वेदोंके सायण महीधर और स्वामी दयानन्द सरस्वती जीके भाष्यानुसार पढ़नेसे जैनियोंको भली भांति ज्ञात होगया है कि उन वेदोंमें ज्ञान कुछ नहीं किन्तु अज्ञान भरा हुआ है। चाहें जिस भाष्यका देखो वा सन् १९०८ सितम्बर मासके वेद शीर्षक लेखको प्रयागसे प्रसिद्ध होनेवाली " सरस्वती „ पत्रिका में देखो अथवा सन् १९०८ ई० के जैनगजटमें आर्यमत लीला को देखो वहां वेदकी ठीक २ पोल खुल गई है॥

उत्तर—ऊपर लिखा पूर्वपक्ष नये जैनीके लेखका ठीक अनुवाद नहीं है किन्तु आशयमात्र लिया है। इसका संक्षेपसे समाधान यह है कि ज्ञानार्थ वेद और ऋग्वेदादि नामक वेदोंमें वास्तवमें कुछ भी भेद नहीं है। इसके रहस्यको समझ लेना साधारण मनुष्यों का काम नहीं है। ऋग्वेदादिसे भिन्न ज्ञानार्थ वेद कोई भी नहीं हैं। सायण महीधर और स्वामी दयानन्दजीके भाष्य में कुछ सार रूप मनुष्यके हितका सदुपदेश अवश्य

उन मनुष्योंको मिल सकता है जो शुद्ध चित्तसे सत्यके अन्वेषणमें श्रद्धा रखते हुये देखें। और जिन लोगोंके पक्षपात, और हठ दुराग्रहकी टट्टी लगी हुई है उनको वेद भाष्योंमें प्राणीका हितोपदेश कदापि नहीं दीख सकता। मनुष्यादिके शरीरोंपर जहां चन्दन वा इतर तथा केशर कपूर आदि सुगन्ध लगा हो वहां मक्खी कदापि नहीं बैठती किन्तु शरीर पर जहां मलिनांश होगा वहीं मक्खी झट आबैठेगी। चाहें यों कहो कि मक्खी की प्रकृतिसे विरुद्ध होनेके कारण उसके लिये चन्दन केशरादि सुगन्ध संसारमें है ही नहीं। इसी दृष्टान्तके अनुसार जिन लोगोंमें ज्ञान मार्गका लेशमात्र भी गाद्दा नहीं है अर्थात् ज्ञानमार्गका जिनकी प्रकृतिसे सर्वथा ही विरुद्ध है उनके लिये वेदभाष्यादि किसीमें भी ज्ञानमार्ग वास्तवमें नहीं है। इसी कारण किसी भाष्यादिमें जैनों को ज्ञान कभी नहीं दीखेगा। क्योंकि वे लोग ज्ञानके मूल ईश्वरको ही तिलाञ्जलि दे बैठे हैं॥

प्रयागकी सरस्वती पत्रिकामें छपे "वेद,, शीर्षकलेखका खण्डन ब्राह्मणसर्वस्वमें उसी समय संक्षेपसे छपादिया गया था तब जिसका खण्डन छप चुका है उसका हवाला

देना वे समझो की बात है। अब रहा जैनगजटमें जो आर्यमत लीला छपी है। उसका उत्तर आर्यमित्र में छप चुका है। यदि जैनमहाशयको साहस हो कि हमारा दावा ठीक है तो सभामें शास्त्रार्थ करलें हम वेदको सर्वथा निर्दोष सिद्धकर देंगे। और जैनमतमें भले ही कुछ अच्छी बातें भी हों तथापि इस मतकी नस २ में परद्वेष और परनिन्दा भरी हुई है जो यथावसर दिखायी जायगी॥

ईश्वरको जैनलोग नहीं मानते परन्तु वेदके सिद्धान्तानुसार सनातन धर्मियोंका सिद्धान्त है कि जगत्की उत्पत्ति स्थिति प्रलय करनेके लिये ईश्वर को मानना चाहिये। इसी पर थोड़ा सा विचार यहां दिखाते हैं। जैन कहते हैं कि (एकोऽहं बहु स्याम्) मैं एक हूं बहुत होजाऊं ऐसी इच्छा ईश्वरमें क्यों हुई, पहिली अवस्था में ईश्वरको क्या दुःख था? और अब उसमें इच्छा हुई तो दुःख होना सिद्ध होगया क्योंकि अप्राप्त वस्तुका चाहना ही इच्छा है इत्यादि॥

संक्षेपसे इसका समाधान यह है कि वेदमतानुयायी लोग ऐसा नहीं मानते कि पहिली दशा वा अवस्थाको ईश्वरने बदल दिया किन्तु सभी आस्तिक मानते हैं कि वह अनन्तशक्तिवाला है इससे अपने एक

अंशसे बहुत भी होगया और पहिली अवस्थामें ज्यों का त्यों भी बना है। यही वेदमें भी कहा है—

पादोऽस्यविश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतंदिवि ॥

कि—इस परमात्माके एक अंशसे यह सब संसार हुआ और वह अधिकांशसे वैसा ही विद्यमान है कि जैसा संसार की रचनासे पहिले था। यदि ईश्वरको पहिली अवस्थामें कुछ दुःख होता तो पहिली अवस्थाको त्याग देता, पहिली अवस्थाके न त्यागनेसे सिद्ध हुआ कि उसे कुछ भी दुःख पहिली अवस्थामें नहीं था न अब है॥

और जो कहा कि इच्छा होना ही दुःखहै सो भी भूल है क्योंकि यदि किसी जैनी रईसके मनमें परोपकार करने की इच्छा हो कि मैं कोई ऐसा काम करूं जिससे अन्य प्राणियों को सुख पहुंचे। तो परोपकार की इच्छाके साथही उसे बड़ा हर्ष होगा दुःख कुछ भी नहीं हो सकता। अप्राप्त वस्तुकी प्राप्तिकी इच्छा में मनुष्योंको दुःख अवश्य होता है। परन्तु ईश्वर कोई मनुष्य नहीं है जिसे कोई वस्तु अप्राप्त हो जिसको सभी प्रकारका आनन्द सदाही प्राप्त हो वही ईश्वर है इसी लिये उसका नाम पूर्णकाम है॥

अब रहा यह कि वह चराचर संसारको किस प्रयोजनसे बनाता है सोभी सुनिये योगभाष्य में इस बात का भी विचार चलाया गया है कि—

ज्ञानंवैराग्यमैश्वर्यं तपःसत्यंक्षमाधृतिः।
स्रष्टृत्वमात्मसम्बोधो ह्यधिष्ठातृत्वमेवच॥
अव्ययानिदशैतानि नित्यन्तिष्ठन्ति शङ्करे॥

भा०—वायुपुराणमें कहा है कि ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, तप, सत्य, क्षमा, धृति, सृष्टि रचनेकी शक्ति अपनेको यथावत् जानना, और अधिष्ठाता मालिक होना ये दश प्रकारके गुण परमेश्वर में ऐसे ही नित्य नियमसे रहते हैं कि जैसे अग्निमें स्वभावसे सदा गर्मी है ज्ञानादि गुण मनुष्योंमें अल्प रहते और अज्ञानादि भी मनुष्य में होते हैं पर ईश्वर में अज्ञानादि कभी नहीं होते। इस पर शंका यह होती है कि जब भगवान् नित्य ही तृप्त है और अत्यन्त वैराग्यसे युक्त है तब अपने लिये तो उसे कुछ भी इच्छा वा तृष्णा हो नहीं सकती फिर अनेक प्रकारके दुःखों वाले संसारको वह क्यों बनाता है ?। क्योंकि जिसका कुछ भी प्रयोजन नहीं होता ऐसा कोई समझदार मनुष्य भी जब व्यर्थ

किसी कामको नहीं करता तब ईश्वरने संसारको क्यों बनाया ?। यह शंका योगदर्शन पाद० १ सू० २५ पर वाचस्पति मिश्रने दिखायी है और वहीं इस शंका पर भगवान् व्यासजी यह उत्तर देते हैं कि—

तस्यात्मानुग्रहाभावेऽपि भूतानुग्रहः प्रयोजनम् । ज्ञानधर्मोपदेशेन कल्पप्रलयमहाप्रलयेषु संसारिणः पुरुषानुद्धरिष्यामीति ॥

भा० उस भगवान्‌का संसारके बनानेमें अपना प्रयोजन कुछ भी न होने पर भी प्राणियों पर कृपा करना ही उसका प्रयोजन है कि संसारको बनाके वेदके प्रकट करने द्वारा तथा बीच २ स्वयं अवतार ले २ कर ज्ञान और धर्मके उपदेशसे मैं संसारी पुरुषोंका उद्धार करूंगा ऐसे प्रयोजनसे वह संसारकी रचना करता है ॥

ऊपरके लेख से दो प्रकारका अभिप्राय स्पष्ट सिद्ध होता है उसमें एक तो यह कि अग्निसे भोजन क्यों पकजाता वा अग्नि क्यों जला देता है अग्निका क्या प्रयोजन है ? यदि कोई ऐसी शंका करे तो उसको सभी समझदार लोग बेसमझ मूर्ख इसलिये मानेंगे कि पकाने

जलानेका अग्निमें स्वाभाविक गुण है उसके लिये वैसा प्रश्न करना ही मूर्खता है। वैसे ही सब ईश्वरमें सृष्टि-रचना और परोपकारकी स्वाभाविक इच्छासे प्राणियों का उद्धार करना स्वाभाविक गुण है तब उसका प्रयोजन क्या है? ऐसी शंका करना ही मूर्खता है। द्वितीय यह कि प्राणियोंका उद्धार करना ही उसका प्रयोजन है, भगवान् परमात्माकी कृपासे लाखों वेदानुयायी पुरुषोंका उद्धार होचुका और होगा। हां ईश्वरका एक प्रयोजन और भी है जो भगवान्ने भ० गी० अ० १६ में कहा है कि मैं उन ईश्वरद्वेषी नास्तिकरूप निर्दयी क्रूर असुर मनुष्योंको निरन्तर ही सिंह व्याघ्रादि अशुभ योनियोंमें गिराता हूं इस कामके लिये भी ईश्वर को संसारका कर्त्ता हर्त्ता माननेकी आवश्यकता है तात्पर्य यह है कि कर्त्ताके खण्डनकी मूल बात कटजानेसे कर्त्ताका ही ठीक २ मण्डन होगया जिसको हठी होनेसे जैनी नहीं मानेंगे तो भी वेदानुयायी लोगोंके चित्तमें आस्तिकता बढ़ानेके लिये यहां थोड़ा लिखदिया है॥

इति शम्॥